शस्त्र और शास्त्र

हमारे देशमें शास्त्रोंका निर्माता, रक्षक, विकासक और उनके द्वारा सारी प्रवृत्तियाँ करनेवाला जो वर्ग है वह ब्राह्मण नामसे और शस्त्रोंका धारण करनेवाला और उपयोग करनेवाला जो वर्ग है वह क्षत्रिय नामसे प्रसिद्ध है। प्रारम्भमें ब्राह्मण वर्गका कार्य शास्त्रोंद्वारा और क्षत्रियोंका शस्त्रोंद्वारा लोकरक्षा या समाजरक्षा करना था। यद्यपि ये दोनों ही रक्षा-कार्य थे, परन्तु इनका स्वरूप भिन्न था। शास्त्रमूर्ति ब्राह्मण जब किसीकी रक्षा करना चाहता है तब उसके प्रति शास्त्रका प्रयोग करता है, अर्थात् उसे हितबुद्धिसे, उदारतासे, प्रेमसे वस्तुस्थितिका ज्ञान कराता है, और ऐसा करके वह विपरीत-मार्गपर जानेवाले व्यक्तिको बचा लेता है। वैसा करनेमें यदि उसे सफलता नहीं मिलती, तो कमसे कम स्वयं अपनी उन्नत-स्थितिको सुरक्षित रखता है। अर्थात् शास्त्रका कार्य मुख्यरूपसे वक्ताको और साथ ही साथ श्रोताको भी बचानेका होता था। उससे श्रोताका अनिष्ट नहीं होता था। शस्त्रमूर्ति क्षत्रिय यदि आक्रमणकारीसे रक्षा करना चाहे, तो शस्त्र-द्वारा आक्रमणकारीकी हत्या करके ही कर सकता है। इसी प्रकार किसी निर्बलकी रक्षा भी बलवान् आक्रमणकारीकी हत्या करके या उसे हराकर ही की जा सकती है। इस तरह एककी रक्षामें प्रायः दूसरेका नाश आवश्यक है। दूसरेकी बलिसे ही आत्मरक्षा या पररक्षा सम्भव होती है। इसी कारण जो शासन करके या समझा करके रक्षणकी शक्ति रखता है वह शास्त्र है और दूसरोंका हनन करके किसी एककी रक्षा करता है वह शस्त्र है। यह भेद सात्त्विक और राजस प्रकृति-भेदका सूचक है। इस भेदके रहनेपर भी ब्राह्मण और क्षत्रिय-प्रकृति जबतक समाज-रक्षाके ध्येयसे विचलित नहीं हुई तबतक दोनोंने अपनी अपनी मर्यादानुसार निःस्वार्थ भावसे कार्य किया और शस्त्र तथा शास्त्र दोनोंकी प्रतिष्ठा बनी रही।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किन्तु ज्यों ज्यों समय बीतता गया शास्त्रद्वारा प्राप्त प्रतिष्ठाके फल चखनेकी वृत्ति और उपभोगकी लालसा शास्त्रमूर्ति वर्गमें बलवती होती गई। इसी तरह शस्त्रमूर्ति वर्गमें भी शस्त्रसेवासे लब्ध प्रतिष्ठाके फलोंका आस्वादन करनेकी क्षुद्र वृत्ति उदित हो गई। फलस्वरूप धीरे धीरे सात्त्विक और राजसिक प्रकृतिका स्थान तामस प्रकृतिने ले लिया और ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई कि शस्त्रमूर्ति वर्ग शस्त्रजीवी और शास्त्रमूर्ति वर्ग शास्त्रजीवी बन गया। अर्थात् दोनोंका ध्येय रक्षा तो रहा नहीं, आजीविका हो गया। जब शास्त्र और शस्त्रके द्वारा आजीविका करने और अपनी भोगवासना तृप्त करनेकी वृत्ति उदित हुई, तब शास्त्रजीवी ब्राह्मणोंमें परस्पर फूट और ईर्षा बढ़ने लगी। उनका काम भक्त अनुयायी और शिष्योंको अज्ञान और कुसंस्कारोंसे बचा लेनेका था, सो न करके वे अपने हाथमें फँसी निरक्षर और भोली जनताकी सेवाशक्तिका अधिकसे अधिक उपयोग किस प्रकार हो, इसी प्रतिस्पर्धामें लग गये। अतएव शिकारीकी तरह ये शास्त्रजीवी अपने शास्त्रजालमें अधिकसे अधिक अनुयायियोंको बद्ध करनेके लिए दूसरे शास्त्रजीवियोंके साथ कुश्तीमें उतरने लगे और जैसा कि आचार्य सिद्धसेनने कहा है कि एक मांसके टुकड़ेके लिए लड़नेवाले दो कुत्तोंमें तो मैत्रीकी संभावना है, किन्तु दो सगे भाई यदि शास्त्रजीवी या वादी हों तो उनमें मैत्रीकी संभावना नहीं, यह स्थिति उपस्थित हो गई।

दूसरी ओर शस्त्रमूर्तिवर्ग भी शस्त्रजीवी बन गया। अतएव उसमें भी भोग वैभवकी प्रतिस्पर्धा और कर्तव्यच्युति प्रविष्ट हो गई। इससे अनाथ या आश्रित प्रजावर्गका पालन करनेमें अपनी शक्तिका व्यय करनेकी अपेक्षा यह वर्ग भी सत्ता और महत्ताकी वृद्धिके पीछे पागल हो गया। परिणाम यह हुआ कि इन शस्त्रजीवियोंके बीच, किसी अनाथ या निर्बलकी रक्षाके निमित्त नहीं, किन्तु व्यक्तिगत द्वेष और वैरके कारण युद्ध होने लगे और युद्धाग्निमें, जिनकी रक्षाके वास्ते इस वर्गकी सृष्टि हुई थी और इतना गौरव प्राप्त हुआ था, उन्हीं करोड़ों लोगोंको बलिदान किया जाने लगा।

इस तरह आर्यावर्तका इतिहास शास्त्र और शस्त्र दोनोंके द्वारा विशेष

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कलुषित हुआ और अपनी पवित्रता अखंडित न रख सका। यही कारण है कि इस देशमें लाखों नहीं करोड़ों शास्त्रजीवियोंके होते हुए भी अज्ञान और विवादका अन्त नहीं है। इतना ही नहीं; इस वर्गने अज्ञान और विवादकी वृद्धि और पुष्टि करनेमें भी कुछ कम हिस्सा नहीं लिया है। शूद्रों और स्त्रियोंको तो ज्ञानका अनधिकारी घोषित कर उनसे सिर्फ सेवा ही ली गई। क्षत्रियों और वैश्योंको ज्ञानका अधिकारी मानकर भी उनका अज्ञान दूर करनेका कोई व्यवस्थित प्रयत्न व्यापकरूपसे नहीं किया गया। शस्त्रजीवी वर्ग भी आपसी ईर्षा-द्वेष भोग-विलास और कलहके फलस्वरूप परराष्ट्रके आक्रमणसे अपने देशको न बचा सका और अन्तमें स्वयं भी गुलाम बन गया। पूर्वजोंने अपने हाथमें शास्त्र या शस्त्र लेते समय जो ध्येय रखा था उससे च्युत होते ही उसका अनिष्ट परिणाम उनकी संतति और समाजमें प्रकट हुआ। शास्त्र-जीवी वर्ग इतना अधिक निर्बल और पेटू हो गया कि वह धन और सत्ताके लोभसे सत्य बेचनेको तैयार हो गया और शस्त्रजीवी राजा महाराजाओंकी खुशामद करनेमें बड़प्पन समझने लगा। शस्त्रजीवी वर्ग भी कर्तव्य-पालनके स्थानमें दान-दक्षिणा देकर ही उस खुशामदी वर्गद्वारा अपनी ख्यातिकी रक्षाके लिए प्रयत्नशील रहने लगा। इस तरह इन दोनोंकी बुद्धि और सत्ताकी चक्कीमें आश्रित जन पीसे जाने लगे और अंतमें समस्त समाज निर्बल हो गया।

हम आज भी प्रायः देखते हैं कि उपनिषदों और गीताका पाठ करनेवाले भी अन्तमें हिसाब लगाते हैं कि दक्षिणामें क्या मिला? भागवतका साप्ताहिक परायण करनेवाले ब्राह्मणकी दृष्टि सिर्फ दक्षिणाकी ओर रहती है। अभ्यासके बलसे श्लोकोंका उच्चारण होता रहता है, किन्तु आँख किसने दक्षिणा रखी और किसने नहीं, यही देखनेके लिए तत्पर रहती है। दुर्गासप्तशतीका पाठ प्रायः दक्षिणा देनेवालेके लिए किया जाता है। गायत्रीके जाप भी दक्षिणा देनेवालेके लिए होते हैं। एक यजमानसे दक्षिणा और 'सीधा' लेनेके लिए शास्त्र-जीवियोंमें जो मारामारी होती है उसकी तुलना एक रोटीके टुकड़ेके लिए लड़नेवाले दो कुत्तोंसे दी जा सकती है। जमीनके एक छोटेसे टुकड़ेके लिए भी अब दो शास्त्रजीवी हाईकोर्टमें जाकर लड़ते देखे जाते हैं। और तो और इन शास्त्रजीवियोंमें जो स्वार्थ और संकुचितताका दोष प्रविष्ट हुआ उसका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असर बौद्ध और जैनके त्यागी माने जानेवाले भिक्षुकोंपर भी हुआ। केवल इन दोनोंमें ही आपसी फूट और विरोध नहीं बढ़ा, इनके उपभेदोंमें भी वह प्रविष्ट हुआ। दिगम्बर भिक्षु श्वेताम्बर भिक्षुको और श्वेताम्बर भिक्षु दिगम्बर-भिक्षुको नीची नजरसे देखने लगा!। उदारताके स्थानमें दोनोंमें संकुचितता बढ़ने और पुष्ट होने लगी। केवल श्वेताम्बर सम्प्रदायके भिक्षुओंमें भी शास्त्रके नामपर आपसमें खूब विरोध और भेद उत्पन्न हुआ। आध्यात्मिक माने जाने-वाले तथा आध्यात्मिक रूपसे पूजित शास्त्रोंका भी उपयोग, एक या दूसरे प्रकारसे धनकी उत्पत्तिमें, विरोधके साथ कटुताकी वृद्धिमें और अपनी अपनी निजी दूकानें चलानेमें होने लगा। इस प्रकार शास्त्रने शस्त्रका स्थान ले लिया और वह भी शुद्ध शस्त्रका नहीं विषाक्त शस्त्रका। यही कारण है कि आज यदि कहीं कलह और विवादके बीज अधिक दिखाई देते हों, या अधिक व्यापकरूपसे कलह और विवाद फैलनेकी शक्यता दीखती हो, तो वह तथाकथित त्यागी होनेपर भी शास्त्रजीवी वर्गमें ही है और इसका असर इधर उधर समस्त समाजमें व्याप्त है।

अब क्या करें ?

ये सब तो भूतकालकी बातें हुईं। किन्तु प्रश्न होता है कि अब वर्तमान और भविष्य कालके लिए क्या किया जाना चाहिए? क्या शास्त्रों और शस्त्रोंद्वारा फैला हुआ विष इन दोनोंके नाशसे दूर हो सकता है या अन्य कोई रास्ता है? इन दोनोंके नाशसे तो विष नष्ट हो नहीं सकता। यूरोपमें शस्त्र कम करने और नष्ट करनेकी बात चल रही है किन्तु वृत्तिके सुधरे बिना केवल शस्त्रोंके नाशसे शान्ति नहीं हो सकती। एक कहेगा कि यदि सर्वत्र वेदका झंडा फहराने लगे तो क्लेश और विवाद जो पंथोंके निमित्तसे होते हैं, वे न हों। दूसरा कुरानके विषयमें भी यही कहेगा किन्तु हमें इस भ्रममें नहीं रहना चाहिए। क्योंकि एक ही वेदके अनुयायियों और एक ही कुरानके माननेवालोंमें भी मारामारी चलती रहती है। जब एक झंडेके नीचे दूसरे अधिक इकट्ठे होंगे, तब अबकी अपेक्षा मारपीट और बढ़ेगी। तब ऐसा कौन-सा उपाय है जिससे वैरका विष नष्ट हो जाय? उपाय एक ही है और वह है उदारता और ज्ञानशक्तिकी वृद्धिका। यदि हममें उदारता और ज्ञानशक्ति बढ़ जाय, तो हम चाहे जिस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शास्त्रको मानते रहें, कलहका कारण स्वतः दूर हो जायगा। आज पंथ या समाजमें जिसकी माँग है वह है शक्ति और ऐक्य। यह तत्त्व उदारता और ज्ञान-वृद्धिके बिना संभव नहीं। भिन्न भिन्न शास्त्रोंका अनुसरण करनेवाले भिन्न भिन्न वर्ग और पंथ सिर्फ उदारता और ज्ञानवृद्धिके बलसे ही हिलमिलकर रह सकते हैं। ऐसे बहुत-से पुरुष हैं जो किसी एक शास्त्र या एक पंथके अनुयायी नहीं हैं, फिर भी एकदिल होकर समाज और देशका कार्य करते हैं और ऐसे भी अनेक मनुष्य हैं जो एक ही संप्रदायके शास्त्र मानने पर भी, परस्पर हिलमिल-कर कार्य करनेकी बात तो दूर रही, एक दूसरेका नाम भी सुननेके लिए तैयार नहीं। जब तक मानस मलीन हो, परस्पर आदर या तटस्थताका अभाव हो, या तनिक भी ईर्षा हो तब तक भगवान्की साक्षीसे एक शास्त्रको मानने या अनुसरण करनेके व्रतका स्वीकार करनेपर भी, कभी ऐक्य सिद्ध नहीं होगा, शक्ति स्थापित नहीं होगी। यह वस्तु यदि किसीके ध्यानमें नहीं आती है तो कहना चाहिए कि उस व्यक्तिमें इतिहास और मानसशास्त्र समझनेकी शक्ति नहीं है।

हमारा समाज और देश क्लेशके भँवरमें फँसा है। वह हमसे अधिक नहीं तो इतनी अपेक्षा तो रखता ही है कि अब अधिक क्लेशका पोषण न हो। यदि हम उदारता और ज्ञानवृद्धिका पोषण करें, तो समाज और देशकी माँगकी पूर्ति की जा सकती है। जैन तत्त्वज्ञानमें अनेकान्त और आचारमें अहिंसाका जो प्रतिपादन किया गया है उसका आशय इतना ही है कि हमें बतौर जैनके आपसमें और दूसरे समाजोंके साथ भी उदारता और प्रेमका व्यवहार करना चाहिए। जहाँ भेद और विरोध हो वहीं उदारता और प्रेमकी आवश्यकता होती है और वहीं वे हमारे अन्तःकरणमें हैं या नहीं, और हैं तो कितने प्रमाणमें हैं इसकी परीक्षा होती है। इसलिए यदि हम जैनत्वको समझते हों तो यह समझना सरल है कि उदारता और प्रेमवृत्तिके द्वारा ही धर्मरक्षा हो सकती है, अन्यथा नहीं। शास्त्रकी उत्पत्ति और उसके उपयोगका उद्देश यही है। यदि इस उद्देशकी सिद्धि शास्त्रसे नहीं होती तो वह रक्षण करनेके बदले जहरीले शस्त्रकी तरह भक्षणका कार्य करेगा और शास्त्र अपना गौरव नष्ट करके शस्त्र साबित होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उदारता दो तरहकी है—एक तो विरोधी या भिन्न ध्येयवालेके प्रति तटस्थ-वृत्तिके अभ्यासकी और दूसरी आदर्शको महान् बनानेकी। जब आदर्श बिलकुल संकुचित होता है, व्यक्तिमें या पंथमें मर्यादित होता है, तब मनुष्यका मन, जो स्वभावतः विशाल तत्त्वोंका ही बना हुआ है उस संकुचित आदर्शमें घबड़ाहटका अनुभव करता है और विषचक्रसे बाहर निकलनेके लिए लाला-यित हो जाता है। उस मनके समक्ष यदि विशाल आदर्श रखा जाय तो उसे अभीष्ट क्षेत्र मिल जाता है और इस प्रकार क्लेश और कलहके लिए उसकी शक्ति शेष नहीं रह जाती। अतएव धर्मप्रेमी होनेकी इच्छा रखनेवाले प्रत्येक व्यक्तिका कर्तव्य है कि वह अपने आदर्शको विशाल बनावे और उसके लिए मनको तैयार करे। और ज्ञानवृद्धिका मतलब भी समझ लेना चाहिए। मनुष्य-जातिमें ज्ञानकी भूख स्वभावतः होती है। उस भूखको भिन्न भिन्न पंथोंके, धर्मोंके और दूसरी अनेक ज्ञानविज्ञानकी शाखाओंके शास्त्रोंके सहानूभूतिपूर्वक अभ्यासके द्वारा ही शान्त करनी चाहिए। सहानुभूति होती है तभी दूसरी बाजूको ठीक तौरसे समझा जा सकता है।

[पर्युषण-व्याख्यानमाला, बम्बई १९३२। अनुवादक, प्रो० दलसुख मालवणिया]